देखना और सुनना

एक दूसरे से जो कुछ हम बोलते हैं क्या उसको हम सुनते हैं? लगभग सारे समय आप अपने से बातचीत में लगे रहते हैं, और जब कोई बीच में आकर आपसे कुछ कहना चाहता है तो उसे सुनने के लिए आपके पास न समय होता है, और न ही कोई झुकाव या इच्छा। सुनने के लिए आपके पास कहीं कोई जगह नहीं होती, हमेशा एक बहरेपन की स्थिति बनी रहती है। इसलिए एक-दूसरे को हम कभी सुन ही नहीं पाते। सुनने की क्रिया में सिर्फ शब्दों का कानों से सुनना नहीं होता, बल्कि शब्द के अर्थ, भाव और उसकी ध्वनि को भी सुनना पड़ता है। 'ध्वनि' का बड़ा महत्त्व है; जब ध्वनि होगी तो अवकाश ('स्पेस') भी होगा, अन्यथा ध्वनि होगी ही नहीं। केवल अवकाश में ध्वनि हो सकती है। मैं बड़ी विनम्रतापूर्वक कहना चाहूंगा कि सुनने की कला में मात्र कान से शब्द को सुन लेना भर नहीं होता बल्कि शब्द की ध्वनि को भी सुनना पड़ता हैं। शब्द की अपनी एक ध्वनि है, और उस ध्वनि को सुनने के लिए अवकाश का होना आवश्यक है। सुनते समय अगर आप जो कहा जा रहा है उसका अपनी पूर्व-धारणाओं के अनुसार, अपनी सुखकारी या दुखकारी प्रतिक्रियाओं के अनुसार अनुवाद कर रहे हैं तो आप वस्तुतः सुन ही नहीं रहे हैं।

वक्ता जो कह रहा है केवल उसको ही नहीं बल्कि उसके कहे के प्रति उठने वाली प्रतिक्रियाओं को (बिना उन्हें वक्ता के अनुरूप होने के लिए काटे-छांटे), क्या आप सुन सकते हैं? तब एक प्रक्रिया चलती हैः वक्ता कुछ कह रहा है, आप उसको सुन रहे हैं, उसको लेकर उठने वाली अपनी प्रतिक्रियाओं को भी सुन रहे हैं - और आप अपनी प्रतिक्रियाओं की ध्वनि और जो कहा जा रहा है उसकी ध्वनि को भी जगह दे रहे हैं। इसका अर्थ है अत्यधिक अवधान - न कि किसी समाधि आत्मविस्मृति में चले जाना। अगर आप वास्तव में 'सुनते' हैं तो उस सुनने में एक चमत्कार घटित होता है। चमत्कार यह कि जो कहा जा रहा है उसकी वास्तविकता के साथ आप सम्पूर्णता में उपस्थित हैं, और उसको तो आप सुन ही रहे हैं साथ-ही अपने प्रति-उत्तरों को भी सुन रहे हैं। यह एक-साथ होने वाली प्रतिक्रिया हैः जो कहा जा रहा है उसे आप सुनते हैं उसके प्रति उठने वाली प्रतिक्रियाओं को सुनते हैं जो कि तुरंत होती है और इस सबकी पूरी ध्वनि को सुनते हैं जिसका अर्थ है 'स्पेस' यानी खाली जगह का होना। तो इस तरह आप अपना पूरा ध्यान सुनने में लगाते हैं। यह एक ऐसी कला है जिसे आप कॉलेज जाकर, डिग्रियां हासिल करके नहीं सीख सकते लेकिन अगर आप हर चीज़ को सुनते हैं तो इसे सीख सकते हैं बहती हुई नदी को, पक्षियों को, हवाई जहाज को, अपनी पत्नी या पति को सुनते हुए, यानी हर चीज़ के प्रति सभान होकर आप यह कला सीख सकते हैं। और हां, अन्तिम (पति-पत्नी) वाली स्थिति काफी कठिन है क्योंकि आप दोनों एक-दूसरे के आदी हो चुके हैं आप लगभग यह जानते हैं कि वह क्या कहने जा रही है और वह भी यह जानती है कि आप क्या कहने जा रहे हैं इस तरह आप दोनों अपने सुनने को पूर्णतया स्थगित रखते हैं।

क्या आप सीख सकते हैं सुनने की कला? कल नहीं, अभी, इसी वक्त, वहीं बैठे हुए? जिसका अर्थ है सुनना, सजग होना या अपने प्रति-उत्तरों के प्रति, और जगह देना अपने पूरे प्रवाह ('रिदम') को। यह एक समग्र प्रक्रिया है, सुनने की एक पूरी गति। यह वह कला है जो आपके सर्वोच्च अवधान की मांग करती है। क्योंकि जब आप इस कदर मौजूद होते हैं तो वह सत्ता जो सुन रही है ('लिसनर') अनुपस्थिति हो जाती है और बचा रह जाता है सिर्फ तथ्य का दर्शन, तथ्य की वास्तविकता या असत्यता। अगर आप वास्तव में यह पता लगाना चाहते हैं कि एक धार्मिक और ध्यानस्थ मस्तिष्क क्या है तो आपको हर-एक चीज़ को बहुत ही ध्यान से सुनना होगा। यह एक विशालकाय नदी के प्रवाह के समान है।

क्या धर्म विचार के दायरे में आता है, अथवा यह विचार से बाहर की चीज़ है? विचार जो कि हमेशा अनुभव, जानकारियों और स्मृतियों पर आधारित है बहुत ही सीमित है। यह पता लगाना कि विचार के परे क्या है और वह भी बिना विचार की गतिविधि के, यही सबसे बड़ी कठिनाई है। मैं यह देखता हूं कि चाहे कोई भी क्षेत्र हो तकनीकी या मनोवैज्ञानिक विचार की गतिविधि हमेशा सीमित होती है यह समझ में आने लायक है चूंकि विचार सीमित है इसलिए वह संघर्ष पैदा करेगा ही। इसे समझने के बाद प्रश्न आता है कि वह कौन सा उपकरण है जो उस चीज़ की छानबीन करेगा जो विचार की गतिविधि से बाहर है? क्या यह सम्भव है? विचार स्वयं अपनी गतिविधियों अपनी सीमाओं की जांच-पड़ताल कर सकता है; किस तरह से वह चीज़ों को इधर-उधर से उठाकर जमा करता है किसी चीज़ को बनाता और किसी को बिगाड़ता है, यह सब। विचार स्वयं अपनी भ्रान्ति में से एक प्रकार की व्यवस्था निकाल सकता है लेकिन वह व्यवस्था सीमित होगी। और इसलिए वह पूर्ण नहीं होगी। व्यवस्था के अन्तर्गत तो अस्तित्व का समस्त कारोबार आ जाता है।

शायद ''जांच-पड़ताल करना'', ''छानबीन करना'' भी ठीक नहीं है, क्योंकि आप किसी ऐसी चीज की जांच-पड़ताल में नहीं उतर सकते जो विचार के परे है। बिना विचार की गति के **अवलोकन करना** सम्भव है या नहीं, यह पता लगाने के लिए अतीत से, यानी देखने वाली सत्ता (द्रष्टा) से पूर्ण मुक्ति की आवश्यकता है। बिना पुरानी स्मृतियों के प्रवेश के, क्या हम उस पेड़ का अवलोकन कर सकते हैं? बिना शब्दों के व्यवधान के, क्या हम उस नदी को सुन सकते हैं? सिर्फ देखना और सुनना!

क्या आप बिना शब्द के, बिना उन स्मृतियों और चित्रों के जो उस शब्द के साथ जुड़ी हुई हैं, अवलोकन कर सकते हैं? क्या आप अपनी पत्नी को (या अपनी महिला मित्र या अपने पति को), बिना उस शब्द पत्नी के, बिना उस स्मृतियों के जो उस शब्द के साथ जुड़ी हुई हैं, देख सकते हैं? अब जरा इसके महत्त्व को देखिए तब आप पत्नी, पति, या नदी को इस तरह देखते हैं। जैसे आप उन्हें पहली बार देख रहे हों! अगर आप सुबह उठकर अपनी खिड़की से बाहर झांकते हैं तो आपको जो कुछ दिखाई देगा पर्वत, घाटियां, पेड़ या हरे-भरे मैदान वह एकदम अद्‌भुत होगा क्योंकि तब आप इस तरह देख रहे होंगे जैसे आप अभी पैदा हुए हों। जिसका अर्थ है कि आप बिना किसी पूर्व धारणा, आग्रह या निष्कर्ष के अवलोकन कर रहे हैं। अगर आप पूरी तरह जागे न हों तो आप ऐसा नहीं कर सकेंगे। आप इसे बड़ी आसानी से कर सकते हैं, अगर आप इसके भावार्थ को गहराई से समझ जाएं तो। अगर मैं अपनी पत्नी को उन तमाम कल्पना-चित्रों, स्मृतियों, घटनाओं और आघातों के आईने से देखता हूं तो मैं उसे वास्तव में कभी नहीं देखता। मैं उसे हमेशा स्मृति-चित्रों के माध्यम से देखता हूं। क्या आप अपनी महिला-मित्र, पत्नी या पति को इस तरह देख सकते हैं कि जैसे उन्हें पहली बार देख रहे हों, बिना उन तमाम कल्पनाचित्रों और स्मृतियों के?

एक धार्मिक मस्तिष्क यानी विचार द्वारा अकलुषित मस्तिष्क के स्वरूप को समझने के लिए अत्यधिक अवधान का होना जरूरी है। जिसका अर्थ है कि आपको अपने गुरु, संप्रदाय या अपने विचारों या अपनी अतीत की परम्पराओं के बंधन से पूर्णतया मुक्त होना होगा यानी अवलोकन के लिए पूर्णतया स्वतंत्र। जब आप इस तरह देखते हैं तो मस्तिष्क की मूल प्रकृति में क्या घटित होता है?

मैंने जब भी पेड़ों, नदियों, आसमान और बादलों की सुन्दरता की तरफ़ देखा है या अपनी पत्नी, बच्चों, पति या बेटी की तरफ देखा है तो हमेशा एक याददाश्त, एक कल्पनाचित्र के साथ देखा है। यही मेरी संस्कारबद्धता है। इसके बाद आप महानुभाव आते हैं और कहते हैं कि बिना शब्द, छवियों अतीत की स्मृतियों के अवलोकन कीजिए। और मैं कहता हूं कि मैं यह नहीं कर

सकता। मेरा तुरन्त यही जवाब होता है। इसका अर्थ है कि आप जो कह रहे हैं उसे मैं वस्तुतः नहीं सुन रहा हूं। तो कहने का अर्थ है कि हम प्रतिक्रिया तुरंत करते हैं और वह प्रतिक्रिया प्रतिरोध का एक रूप होती है क्योंकि हम किसी विशेष गुरु या धर्ममत से इस क़दर बंधे होते हैं कि उन्हें छोड़ते हुए डर लगता है। तो मुझे उस प्रतिक्रिया की तरफ तो ध्यान देना ही है, साथ ही आप जो कह रहे हैं उसे भी ध्यान से सुनना है इसका अर्थ है कि अवलोकन करने के लिए शब्द से, और शब्द में जो कुछ भी निहित है उससे पूर्ण मुक्ति का होना बेहद जरूरी है, और साथ ही उन दोनों को सुनना भी जरूरी है।

इसलिए आप इस पूरी गति के प्रति सजग रहिए प्रतिरोध और सुनने के प्रति, सुनने की इच्छा के प्रति और इस आभास के प्रति भी कि अगर आप प्रतिरोध करेंगे तो सुनना नहीं हो सकेगा। आप इस सजगता के साथ खड़े रहिए। यह मत कहिए, ''मैं इसे जरूर समझूंगा।'' केवल इसे ध्यान से देखते रहिए, जिससे कि आप पूर्ण अवधान की स्थिति में आ जाएं।

विशुद्ध (अमिश्रित) अवलोकन बिना 'स्व' ('सॅल्फ़') की गति के होता है। शब्द ही 'स्व' है शब्द, स्मृतियां, आघात, भय, चिन्ता, पीड़ा, दुख और मानव की सारी वेदना, मेरी चेतना में समायी हुई हैं जो कि 'स्व' है। और जब आप अवलोकन करते हैं तो यह सब विदा हो जाता है। अवलोकन में वे सारी चीज़ें प्रवेश नहीं करती। देखने वाली ''मैं'' जैसी कोई सत्ता नहीं होती। तब उस अवलोकन से दैनिक जीवन में पूर्ण व्यवस्था आती है।